International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(3): 96-99

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(3): 96-99
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-03-2021
Accepted: 15-04-2021

डा. हेमन्तकुमार नेपाल
सहायक प्राध्यापक, साहित्य विभाग,
सरकारी संस्कृत महाविद्यालय,
साम्दोङग, पूर्व सिक्किम, भारत

Corresponding Author:
डा. हेमन्तकुमार नेपाल
सहायक प्राध्यापक, साहित्य विभाग,
सरकारी संस्कृत महाविद्यालय,
साम्दोङग, पूर्व सिक्किम, भारत

कविकोपकलापः नटक सङ्ग्र का यथार्थवादी अध्ययन

डा. हेमन्तकुमार नेपाल

सारः- यथार्थ एवं वाद उभयपद की योगे से यथार्थवाद पद निर्मित होता हैं। ज्ञानेन्द्रियद्वारा किया गया प्रत्यक्ष वस्तु का ज्ञान ही यथार्थ कहा जाता हैं। आधुनिक भारतीय साहित्यशास्त्र में यही यथार्थ का सिद्धान्त यथार्थवाद की पृष्ठभूमि के रूपमे स्थित हैं। यथार्थवाद मे पृथ्वि की वस्तुस्थिति जिस तरह की है उसी रूप में उस को समझकर वर्णन एवं चित्रण किया जाता हैं। यथार्थवाद की प्रत्यक्ष सम्बन्ध मनवसमाज से होती हैं। इस लेख की अनुसन्धानात्मक विषय विश्वास विरचित कविकोपकलापः नाट्य सङ्ग्रह के कृपाणखल्वाटचरितम्, कविकोपकलापः, साक्षात्कारः एवं शठं प्रति शाठ्यं चार नाटकौं में प्रतिपादित सामाजिकयथार्थ विषय का अध्ययन हैं। नाटककार विश्वासद्वारा विरचित कविकोपकलापः नामक नाट्यसङ्ग्रह में पौराणिक एवं समाजिक विषय को लेकर नाटकौं की रचना किया गया हैं। पौराणिक विषय ग्रहण किया गया नाटकौं में यथार्थवाद की न्यून प्रयोग पाया जाता हैं। उन नाटकौं को छोडकर अन्य नाटक में समाज में विध्यमान समस्याऔं, आर्थिक सामाजिक विसङ्गतिऔं, पारिवारिक समस्याऔं, मानव के मानव उपर मूल्यहिनता, धूर्तचरित एवं मानवइच्छा आकाङ्क्षाका भी यथावत सरल समबाद माध्यम से सतत प्रतिपादित किया गया हैं। ये नाट्यसंग्रह कूल नौं नाटकौं का सङ्ग्रह हैं। इनमे विषय के आधार में पौराणिक एवं सामाजिक नाटक हैं। सामाजिक विषयवस्तु अङ्गिकृत किये हुए नाटक में सामाजिक यथार्थवाद का प्रवलरूप देखा जाता हैं।।

कूट शब्द: कविकोपकलापः, यथार्थ एवं वाद उभयपद, आधुनिक भारतीय साहित्यशास्त्र

प्रस्तावनाः

यथार्थवाद की अववधारणा सर्व प्रथम पाश्चात्यकाव्यशास्त्र में अङ्कुरिता हुआ देखा जाता हैं। प्राचीन काल से यथार्थवाद की महत्वमका अनुभव करते हुए विचारविमर्ष एवं वादविवाद साहित्य सिद्धान्त क्षेत्र चल रहा हैं। सर्वप्रथमः प्लेटो ने कविताविधा को अनैतिक एवं असत्यस्य के भूमि में विरचिता विधा मानते हुए आरोप किया हैं। इस प्रकार का प्लेटो का विचार आदर्शवाद से प्रभावित था। तदनन्तर उनके शिष्य अरस्तु ने अपने गुरु प्लेटो की यथार्थवादी अवधारणा से असहमान होते हुए उनकी अवधारणाका उत्तर के रुप में अनुकरण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अनुकरण सिद्धान्त हि इस समय में यथार्थवाद को परिपोषित एवं प्रतिनिधित्व करता हैं। अत यथार्थवादका वैशिष्ट्य एवं धर्म आज भी अनुकरणसिद्धान्त में पाया जाता हैं। पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में प्लेटो एवं अरस्तु के समय से अद्यावधि आदर्शवाद और यथार्थवाद के संदर्भ में समालोचकौं का विवाद देखा जाता हैं।[1]

[1] मिश्र, सभापति, सन् २०१३, भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन, इलाहावाद : जयभारती प्रकाशन, पृ. २९३

यही विवाद उन्नीसौं शताब्दी में आकर पूर्णयथार्थवाद के रूप में विकास हुआ हैं।

यथार्थ एवं वाद उभयपद की योगे से यथार्थवाद पद निर्मित हुआ हैं। जिसका अर्थ को अनतिक्रमण करते हुए जैसे हैं उसी तरह से बोलना यथार्थवाद कहा जाता हैं। यथार्थ क्या हैं**?** जैसा हैं वैसा वा बताया सत्य वास्तविक कथनमेव ही यथार्थ हैं। न्यायवैशेषिक दर्शन के आधार पर जिस को जिस स्वरूप में देखा जाता हैं वही प्रत्यक्ष हैं। इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष हैं। अत ज्ञानेन्द्रियद्वारा किया गया प्रत्यक्ष वस्तु का ज्ञान ही यथार्थ कहा जाता हैं। समान्यतया आधुनिक भारतीय साहित्यशास्त्र में यही यथार्थ का सिद्धान्त यथार्थवाद की पृष्ठभूमि के रूपमे स्थित हैं।

वस्तुत यथार्थवाद साहित्यसिद्धान्त में विशेषरूसे सम्बन्धित हैं। सत्य क्या हैं**?** यथार्थ ही सत्य हैं **?** इस प्रश्न का उत्तर अन्वेषण के लिए पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में यथार्थवाद को साहित्यसिद्धान्त के रूप में अस्तित्व स्थापित किया गया हैं। बाह्य चराचर भौतिकि वस्तु विश्वासनीय नही हैं परन्तु उसका प्रत्यय ही सत्य हैं। अत प्रतीति विचार ही यथार्थ हैं। इसी को प्रथम सत्य वा मूल सत्य कहा जाता हैं। भौतिक जगत उक्त मूल सत्यका अनुकरण ही हैं। वो वास्तविक सत्य को छोडकर दूरतर प्रतिभाषित होती हैं। ये रहस्यवादी, अध्यात्मवादी एवं आदर्शवादी प्लेटो का चिन्तन यथार्थ चिन्तन एवं वस्तु यथार्थ ज्ञान और परमदिव्य यथार्थ प्रति उन्मुख देखा जाता हैं। अत्याधुनिक यथार्थ अत्यधिक वस्तुपरक हैं। अत ये विचार प्लेटो के विचार से नितान्त विपरित हैं।[2] यथार्थवादः दर्शनशास्त्र एवंसाहित्यशास्त्र में समानरूप से प्रचलित हैं। भौतिकदर्शन शास्त्र के क्षेत्र में भौतिक जगत ही वास्तविक हैं। अत उसका आधार मानसिक जगत नही हैं। भौतिकदर्शन में यथार्थवाद स्वतन्त्र, अपरतन्त्र और सत्तावन्त केवल भौतिकि सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित होता हैं। साहित्यशास्त्र में यथार्थवाद पद से जगदितल मे यथावद् वस्तुवर्णन वा यथा वस्तु है उसी रूप मे वर्णन करना कहा जाता हैं। इस प्रकार की वर्णन मानसिक और भावात्मक होती हैं। जीवन और जगत की एक आपस में परस्पर सम्बन्ध जैसी हैं उसी रूप को लेकर प्रस्तुत करना एवं जीवन जगत की सम्बन्धद्वारा मानवजीवन के दृष्टिपथ में आए गए वास्तविक स्थिति जिस तरह की होती हैं उसी तरह देखाया गया मान्यता विशेष को यथार्थवाद कहा जाता हैं। वास्तव मे यथार्थवाद मे पृथ्वि की वस्तुस्थिति जिस तरह की है उसी रूप में उस को समझकर वर्णन एवं चित्रण किया जाता हैं। समाज की यथार्थस्थिति, सत्य वा वास्तविक घटित एवं सम्भव्यमान सङ्घटना का समुद्घाटन यथार्थवाद में कीया जाता हैं। अत यथार्थवाद एक साहित्यकला वा ललितकला के सम्बन्ध में आया गया सिद्धान्त कहा जाता हैं।

यथार्थवाद की प्रत्यक्ष सम्बन्ध मनवसमाज से होती हैं। मनवजीवन का सम्बन्ध परम्परा से होती हैं। अत पारम्परित रूप से आया गया मानव का सम्बन्ध ही मानवसमाज हैं। समाज में विद्यमान वस्तु, प्रत्यय, व्यवहार, आदि का अर्थबोधक पद सामाजिक हैं। सामाजिक गुणबोधक विशेषण पद सामाजिक हैं।[3] अत यथार्थवाद में सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया जाता हैं। यथार्थवाद में सहितयोर्भाव साहित्य ये उक्ति चरितार्थ एवं सार्थक होती हैं। साहित्य ही समाज की दर्पण हैं। ये सत्य हैं। ये उक्ती यथार्थवाद में घटित होती हैं।

इस लेख की अनुसन्धानात्मक विषय विश्वास विरचित कविकोपकलापः नाट्य सङ्ग्रह के कृपाणखल्वाटचरितम्, कविकोपकलापः, साक्षात्कारः एवं शठं प्रति शाठ्यं चार नाटकौं में प्रतिपादित सामाजिकयथार्थ विषय का अध्ययन हैं। अत प्रतिपाद्य विषय का यथार्थाथवाद के आधार में सोदाहरण अध्ययन किया जाता हैं।

अध्ययनः- नाटककार विश्वासद्वारा विरचित कविकोपकलापः नामक नाट्यसङ्ग्रह में पौराणिक एवं समाजिक विषय को लेकर नाटकौं की रचना किया गया हैं। पौराणिक विषय ग्रहण किया गया नाटकौं में यथार्थवाद की न्यून प्रयोग पाया जाता हैं। उन नाटकौं को छोडकर अन्य नाटक में समाज में विध्यमान समस्याऔं, आर्थिक सामाजिक विसङ्गतिऔं, पारिवारिक समस्याऔं, मानव के मानव उपर मूल्यहिनता, धूर्तचरित एवं मानवइच्छा आकाङ्क्षाका भी यथावत सरल समबाद माध्यम से सतत प्रतिपादित किया गया हैं। नाटकौं के प्रतीकात्मक शिर्षकिकरण से समाज एवं परिवार मे विघटित और सम्भव्यमान घटनाऔ का सङ्केत किया गया हैं। प्रतीकात्मक शीर्षक ने ही यथार्थ की सङ्केत किया गया हैं। प्रथम यथार्थवादी कृपाणखल्वाटचरिम् नाटकका प्रतिपाद्य विषय कृपाणका चरित उद्घाटन किया हैं। इस मे ही खल्वाट के शिर पर केश अङ्कुर उच्छेद्वारा लुच्चाको धन खिच्चाले खान्छ (कञ्जुस का धन कुत्ता लुछ लेगा) इस तरह से नेपाली जनजीवन मे प्रचलित उक्ति सार्थक हुआ देखा जाता हैं। इस नाटक मे निश्च्युत मानवता एवं धूर्तचरित्र देवदत्त, चन्दनक और वैद्यराज के चरित्रके माध्यम से अभिव्यक्त होता हैं। हमारी मनव समाज मे ऐसे व्यवहारके लोग रहते हैं। इस तरह के

[2] जोशी, कुमारबहादुर, सन् २००५, पाश्चात्य साहित्यका प्रमुख वाद, काठमाडौ : साझा प्रकाशन, पृ. ३४

[3] योञ्जन, जस, सन् २०१२, परख, दार्जिलिङ : श्याम ब्रदर्स प्रकाशन, पृ. २५३

व्यवहार करने वाले लोगौं का नटक मे यथातथ्य स्वभाव विश्वास ने चित्रित किया हैं। ये यथार्थ एवं वास्तविक सामाजिक व्यक्तिका व्यवहार हैं। कृपाण का चरित्र दवदत्त की माध्यम से इस तरह से प्रकट किया गया हैं –

> देवदत्तः – भोः, मम समीपे धनस्य महान् सङ्ग्रहः एव अस्ति इति चिन्तितवान् वा? मम परिस्थितिं यदि जानति तर्हि भवानेव मह्यम् ऋणं दद्यात्.....।[4]

उक्त सम्बाद मे देवदत्त नामक धनमोह में निमग्न डुबा हुवा चरित्र का कृपणत्व मम समीपे धनस्य महान् सङ्ग्रहः एव अस्ति इस उक्तिद्वारा अभिव्यक्त होती हैं। उसके पास धन होते हुए भि तिरस्कार रूपसे याचक प्रति व्यवहार करना अनुकूल नही देखा जाता। इससे चरित्र का व्यवहारिक एवं मानसिक दारूणता प्रकटित होती हैं। हमारे समाज में इस तरह के स्वभाव के मालिक रहते हैं। इस तरह के स्वभाव के लोगौं का प्रतिनिधि पात्र को रूपमे विश्वास ने देवदत्त नाम के पात्र का इस नाटक मे प्रयोग किया हैं। इस प्रकार के लोग केवल अपने स्वार्थ ही देखते हैं। अत वें अनेक प्रकार के जिजिविशा को संरक्षण करते हैं। जिजिविशा निमग्न इच्छा से जीवन धारण करते हैं। अर्थ मोह से किसि प्रकार के साफलता प्राप्त नही कर सकते। इस प्रकार के स्वभाव से वें अन्य लोगौं की आँख की धुली बन जाते हैं। उन्ही में प्रायशः धुर्त भी होते हैं। वें समयके प्रतिक्षा में होते हैं। उचित समय मिलते ही दुसरे सिधे-साधे लोगौं को ठग लेते हैं। अत कदापि कृपण की इच्छा पूर्ण नही होती। इसी वास्तविक यथार्थ को विश्वास ने इस नाटक में प्रकट किया गया हैं।

नाटककार विश्वास ने साक्षात्कारः नाटक में वर्तमानसमये शिक्षित युवा जनौं के समक्ष विद्यमान प्रमुख वेरोजगारी समस्या का हास्य माध्यम से प्रकटित किया हैं। परिसंवादद्वारा शिक्षित युवाओं के मन में विघटित अर्थ अभाव के कारण स्वात्माभिमान परित्याग करते हुए जैसे भी और कोही भी कार्य करने की स्थिती अभिव्यक्त किया हैं। स्व जीवनोपार्जन के लिए क्या-क्या करने को बाध्य बनते है लोग इस विषय का प्रतिपादन किया हैं। यहाँ पर "बुभुक्षितं किं न करोति पुंसाम्" ये उक्ति चरित्रित हुवा देखा जाता हैं। इस भावको निम्न उदाहरण से समझाया जा सकता हैं-

> आनन्दः- सत्यं भो, ममापि तदारभ्य सा एव चिन्ता। पश्यतु....., (चित्रं दर्शयन्) अहम् अत्र कथं अस्मि। इदानीं कथं अस्मि। मम मुखं द्रष्टुं मम एव लज्जा भवति। (निराशया) रमेश, अहं साक्षात्कारार्थं न गच्छामि भोः![5]

यहाँ आनन्द की आवस्यकता, स्वात्माभिमान चिन्ता एवं आत्मविश्वाश अभाव तीन विषय नाटककार ने अभिव्यक्त किया हैं। विसङ्गतिमूलक वर्तमान काल में स्वरोजगार प्राप्त करने के लिए युवाओं में उपरोक्त तीन विषय महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती हैं। जो कोही के पास शिक्षा होते हुए भी उपरोक्त विषयौं मे एक के अभाव मे भी स्वरोजगारी बन्ने के लिए सामर्थ्य नही होते। नाटक में आनन्द के पास आवस्यकता है पर भि विसङ्गत स्वाभिमान की चिन्ता आत्मविश्वाश को ह्रास करती हैं। अतः साक्षात्कार के लिए उसको निरूत्साहित दिखा जाता हैं। दार्शनिक दृष्टि के आधार में स्वरूप एवं विचार के मध्य परिपोष्य परिपोषकभाव सम्बन्ध प्रतिभाषित होता हैं। यहाँ आनन्द का स्वरूप उसका स्वात्माभिमान को परिपोशित् करता हैं। किसिभी वस्तुन का आवस्यकता व्यक्ति को उसको प्राप्त करनेका प्रयास के रूप मे व्यक्त होता हैं लेकिन उसके उपर विचार का और आत्मविश्वाश की भावना होनी चाहिए। विचारगत दुर्वलताद्वारा आवस्यकता गुणिभूत होती हैं। अत एव कहा जाता है यदि कुछ करना है तो आत्मविश्वासगत विचार प्रवल होना चाहिए। प्रतिस्पर्धात्मक वर्तमान समय में प्रतिदिन प्रतिस्पर्धा द्रुतगति से बृद्धि होती जा रही हैं। अत वेरोजगार लोगौं की संख्या मे भी बृद्धी होती जा रही हैं। औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त किये लोग स्वात्माभिमान का परिपाल करते हैं। स्वात्माभिमान भी स्वरूपात्मक और भावनात्मक दो प्रकार की होती हैं। स्वरूपात्मक स्वात्माभिमान में अपने बाह्य स्वरूप पर लोगौं को अहङ्कार की भावना रहती हैं। भावनात्मक स्वात्माभिमान में शिक्षा वा स्वात्माविश्वाश परिपालन के लिए स्वाहङ्कार प्रवल होती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि के आधार में वही अहङ्कार युवाओं को विसङ्गति के मार्ग मे ले जाती हैं। अत अधिकांश युवा लोग वेरोजगार की भावनाद्वारा ग्रसित होते हैं अत कुछ भी कर नही पाते। इस नाटक में आनन्द का भि यही समस्या हैं। रोजगारस्य आवस्यकतारत आनन्द स्वरूप की अभिमान के कारण आत्मविश्वाश को ह्रास करता हैं। इस नाटक में मुख्यरूप से उक्त विषय में ही संवाद प्रवल होती हैं। इस नाटक की घटना वास्तविक, द्वयलापीय संवाद, सरल भाषा, शैली वर्णनात्मक और समासातमक हैं । सामाजिक यथार्थवाद की आधार में नाटक सफल एवं अभिनयात्मकता के आधार मे मञ्चनीय हैं।

शठं प्रति शाठ्यम् इस शिर्षक के नाटक में नाटक की शिर्षकद्वारा ही वर्तमान समय की समाज की गती प्रतिती

[4] विश्वासः, सन् १९९८, कविकोपकलापः, बेङ्गलूरू, संस्कृतभारती, पृ. ३३

[5] विश्वासः, पूर्वोक्त, पृ. ६२

होती हैं। वर्तमान समय में जायदाद की प्रथा कानुनीक रूप से निशेध किया हैं पर भी समाज में विद्यमान हैं। पारम्परिक रूप के आधार में वरदक्षिणा के रूप में प्रचलित हैं। इस नाटक की मूल विषय वरदक्षिणा ही हैं। पारम्परिक रूप के आधार में समाज कें ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ लोग कानुन को उलङ्घन करके इसकी याचना कर्ते हैं। युवाओं में इस विषय में विरोध की भावना हैं पर भी विरोध कर नही पाते। शास्त्री की इस उक्तिद्वारा उक्त विषय स्पष्ट होती हैं –

> शास्त्री – वस्तुतः वरदक्षीणास्वीकरणं सः वरः श्रीधरः न इच्छति इति श्रुतम्। परन्तु तस्य पिता तदिच्छति।[6]

यहाँ विश्वास ने स्पष्ट निर्दिष्ट किया हैं की वर के पिता वरदक्षिणा चाहते हैं इस कथनद्वारा सुशिक्षित युवा लोग भी पारिवारिक प्रभुत्व एवं सामाजिक प्रभुत्व के वस मे होते हैं। अत पारिवारिक एवं सामाजिक कुत्सित प्रथा परिवर्तन करने में स्वच्छन्द समर्थ नही हैं। अत एव इस प्रकार की प्रथा कानुनिक रूप से वा सामाजिक व्यवस्थागत रूप से अनुचित हैं। इस नाटक में वर्तमान समय के भारतीय सामाजिक स्थिति एवं गति अभिव्यक्त होती हैं।

इसी नाटक मे धनमोह, सेवानिवृत्त सर्कारी कर्मचारी लोगौं की आर्थिकावस्था, धन के मोह में निबद्ध सम्बन्ध, धनवान की सामाजिक प्रभुत्व, धन हिन की अप्रभुत्व, भारतीय सामाजिक व्यवस्था आदि प्रदर्शित किया हैं। यहाँ धन की मोह वीरभद्र के माध्यम से प्रदर्शित होती हैं। सेवानिवृत्त हुए सर्वकारी कर्मचारी लेगौं की आर्थिक अवस्था श्रीनिवास की माध्याम से अभिव्यक्त होती हैं। धन के मोह में निबद्ध सम्बन्ध श्रीनिवास की पारिवारिक वार्तालाप, वीरभद्र, श्रीनिवास एवं शास्त्री के मध्य हुए संवाद के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। धनहिन की अप्रभुत्व श्रीनिवास की पारिवारिक अवस्था एवं घर ही बेचने की विगसङ्गत विचार के माध्य से अभिव्यक्त होती हैं। इस नाटक में भारतीय लोग किस तरह से जीवनं धारण करते हैं ये प्रदर्शित किया हैं। धनवान एवं निर्धन मध्य मे कितिनी विषय में वैविधता आती हैं यहाँ प्रष्ट किया हैं। इस नाटक में भारतीय संस्कृतिका महत्व भी दिखाया गया हैं।

निष्कर्षः- यथार्थ एवं वाद उभय शब्द की समबन्ध से निर्मित यथार्थवाद पद साहित्यसिद्धान्त के आधार में पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में वादरूप से विकसित हैं। केवल पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे ही नही पूर्वीय साहित्यशास्त्रौं में हिन्दी, नेपाली, वङ्ग्ला आदि में भी इसकी प्रभाव अधिक। संस्कृत साहित्य में इसकी प्रभाव नही हैं। नाटककार विश्वासद्वारा विरचित कविकोपकलापः नाट्यसङ्ग्रह आकार के रूप में छोटी हैं परन्तु नाट्यशिल्प के रूप में प्रवल हैं। ये नाट्यसंग्रह कूल नौं नाटकौं का सङ्ग्रह हैं। इनमे विषय के आधार में पौराणिक एवं सामाजिक नाटक हैं। सामाजिक विषयवस्तु अङ्गिकृत किये हुए नाटक में सामाजिक यथार्थवाद का प्रवलरूप देखा जाता हैं।।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

१. कुमारबहादुर, जोशी, सन् २००५, पाश्चात्य साहित्यका प्रमुख वाद, काठमाडौ : साझा प्रकाशन
२. जस,योञ्जन, सन् २०१२, परख, दार्जिलिङ : श्याम ब्रदर्स प्रकाशन
३. विश्वासः, सन् १९९८, कविकोपकलापः, बेङ्गलूरू : संस्कृतभारती
४. सभापति, मिश्र, सन् २०१३, भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन, इलाहावाद : जयभारती प्रकाशन

[6] विश्वासः, पूर्वोक्त, पृ. ७३